भोजपुर
बिहार में नक्सलवादी आंदोलन...

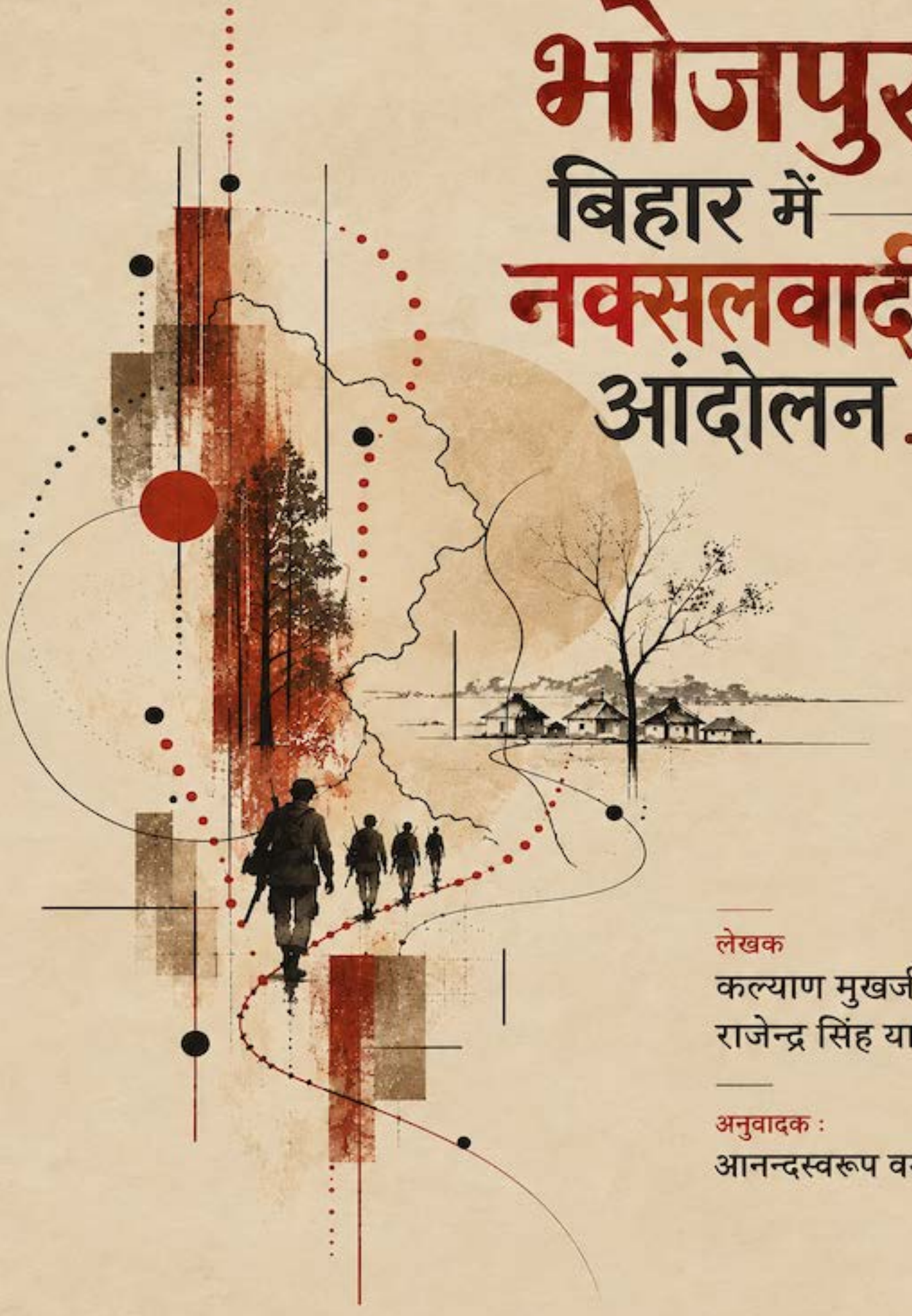

लेखक

कल्याण मुखर्जी

राजेन्द्र सिंह यादव

अनुवादक :

आनन्दस्वरूप वर्मा

भोजपुर बिहार में नक्सलवादी आंदोलन

कल्याण मुखर्जी

राजेन्द्र सिंह यादव

अनुवादक

आनन्दस्वरूप वर्मा

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: सितंबर, 2026

© आनन्दस्वरूप वर्मा

यह पुस्तक उन सभी लोगों को समर्पित है जिन्होंने मानव जाति की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी और जो आज भी दृढ़ता के साथ इज़्ज़त के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

हम प्रशांत पंजियार, सुकांत चटर्जी, मंजु काला, रामनरेश महाराज, पी० पी० घोष, हिरण्यमय घर, निर्मल सेनगुप्ता, हर्ष सेठी, प्रोफेसर नितोश सार० डे, अरविन्द नारायण दास, प्रेमशंकर दुबे, अरुण कुमार, सुरेश शर्मा, अशोक शुक्ला तथा अन्य तमाम लोगों के आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के लिखने में साधनों और विचारों से अपना अमूल्य सहयोग दिया। हम भोजपुर के उन ढेर सारे लोगों के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने खुद को गुमनाम रखना बेहतर समझा।

किताब के बारे में

1967 में उत्तरी बंगाल के नक्सलवानी इलाके में किसान संघर्ष छिड़ने के बाद से जारी हथियारबंद माओवादी आंदोलन ने अब तक अपराजेय समझी जाने बाली भारतीय राजसत्ता को झकझोर दिया है। आंध्रप्रदेश के श्रीकाकुलम में, पश्चिमी बंगाल के बीरभूम और डेवरा- गोपीवल्लभपुर में, केरल के वायनाड के जंगलों में, उत्तर बिहार के मुशहरी में किसान छापामारों ने 'भारत के ऊपर वसंत के वज्रनाद' का संदेश धागे बढ़ाया है।

राज्य सरकारों ने बड़ी बर्बरता के साथ इनका दमन किया। 'मुठभेड़' नाम पर इसने नक्सलवादियों और गरीब किसानों की हत्याएँ की, आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्ताओं को जेलों में बंद किया और देशव्यापी किसान संघर्ष की खुले शब्दों में भर्त्सना की। 1972 आते-आते इसे भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी- लेनिनवादी) के नेतृत्व में संचालित छापामार युद्ध का दमन करने में एक हद तक कामयाबी मिल गयी। बिहार में, उत्तरी बिहार के मुशहरी इलाके में नक्सलवादी आंदोलन की विफलता के बाद राज्य सरकार को विश्वास हो चला था कि अब स्थिति नियंत्रण में है कि तभी दक्षिण-पश्चिम बिहार के भोजपुर जिले में स्थित एक अपेक्षाकृत अज्ञात गाँव चवरी की घटनाएँ 6 मई, 1973 के अखबारों की सुखियां बन गयीं।

उस दिन पुलिस के साथ एक लम्बी मुठभेड़ में चवरी के चार किसान इससे भी काफी पहले मारे गए। नक्सलवाद की आग सभी बुझी नहीं थी। इससे भी काफ़ी पहले 1969 में

बिहार में 'हरित क्रांति' का आदर्श जिला भोजपुर में किसानों का विक्षुब्ध समूह उन दिनों शुरू हो रहे नक्सलवादी आंदोलन में शामिल होने लगा था। एक अध्यापक जगदीश महतो तथा एक भूतपूर्व अभियुक्त रामेश्वर अहीर के नेतृत्व में शुरू हुए इस आंदोलन ने जिले में व्याप्त चेतना से शक्ति ग्रहण की। सोशलिस्ट पार्टी के गढ़ सहार ब्लाक में लोग विशेष रूप से जागरुक थे।

पत्रकार कल्याण मुखर्जी और पेशे से वकील राजेंद्र सिंह यादव भोजपुर के इस आंदोलन के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं। मुखर्जी ने दो वर्षों और यादव ने एक दशक से भी अधिक समय इस जिले में बिताया है। भोजपुर : बिहार में नक्सलवाद आंदोलन पुस्तक में लेखकों ने बताया है कि किस तरह यहाँ आंदोलन का सूत्रपात और विकास हुआ और राज्य सरकार के भयंकर दमन के बावजूद आंदोलन जारी रहा। पुस्तक में, जिले के बीच से बहती सोन नदी के दोनों तटों के क्षेत्र के छः दशक का इतिहास लिपिबद्ध है- यह इतिहास, जनता के संघर्ष का इतिहास, पिछड़ी जातियों के बीच उत्पन्न असंतोष की पहली चिंगारी से लेकर वर्तमान विद्रोह की लपटों का इतिहास है।

अनुक्रम

प्रस्तावना	7
सोन के तट पर पाँच दशक	14
दूसरी लहर	46
भोजपुर - टुकड़ों में बँटी एक कहानी	62
राज्य की हिफाजत के लिए	201
प्रतिक्रियाएँ	276

प्रस्तावना

1977 के मार्च के दूसरे हफ्ते की बात है। एक खटारा जीप में हम चार लोग- दो पत्रकार, खेतिहर मजदूरों की स्थानीय महिला नेता बनारसी देवी गुप्ता के पति और मैं — दक्षिण बिहार में भोजपुर जिले के सहार ब्लाक में स्थित गुरपा गाँव की ओर चले जा रहे थे। गर्मी और धूल का ऐसा आलम था कि सड़क मुश्किल से ही दिखायी दे रही थी।

हमारे गाइड ने हमें बताया कि प्रभावकारी सोन नहर व्यवस्था के बावजूद भोजपुर खासतौर से अकालग्रस्त इलाक़ा है। रास्ते में एक गांव में हमने पानी पीने के लिए ड्राइवर से अपनी जीप रुकवायी। जैसे ही हमारी जीप बावनगावा के सिवान में पहुँची कि खेल में मशगूल लड़कों का एक झुंड 'पुलिस, पुलिस' चिल्लाते हुए तितर-बितर हो गया। जीप से जब हम बाहर निकले तो गाँव का एक भी आदमी हमसे मिलने आगे नहीं बढ़ा। उन्हें यह समझाने में हमें खासी मुसीबत का सामना करना पड़ा कि हम न तो पुलिस के आदमी हैं और न किसी तरह के मुखबिर ही हैं।

हमारे गाइड ने हमें बताया कि आरा मुफ़स्सिल ब्लाक का यह गाँव बावनगावा 'नक्सलाइट' गाँव नहीं है। लेकिन जब से पुलिस ने यहाँ एक बार छापा मारा तब से लोग काफ़ी शक्की हो गये हैं। जीप देखते ही लोगों में दहशत फैल जाती है। फिर भी भोजपुर के 'अशांत क्षेत्रों' – सहार, संदेस तरारी और उदवंतनगर ब्लाकों में लोग बुज़दिली के शिकार नहीं थे। वे जीप की आवाज़ सुनकर भागते नहीं थे। रास्ते में हम सहार ब्लाक के एकवारी

गाँव में रुके जिसे 'भोजपुर का नक्सलबाड़ी' कहा जाता है—यहाँ लोग बस शक की निगाह से हमें देखते रहे। यह परिवर्तन बहुत साफ़ दिखायी देता था। बाद में, बिहार मिलिट्री पुलिस (बी० एम० पी०) के एक जवान के साथ हमारी लम्बी बातचीत हुई और उस जवान ने बताया कि "नक्सलवादी क्षेत्रों में आप वहाँ की स्थानीय जनता पर क़तई भरोसा नहीं कर सकते।"

आधी रात के लगभग हम गुरपा पहुँचे। बाहर एकदम सन्नाटा था और इस सन्नाटे में केबल झींगुरों की आवाज खलल डाल रही थी। कुछ ही दिनों पहले 11 मार्च को यह गाँव भट्ठी बना हुआ था। यहाँ के सबसे बड़े भूमिहार जमींदार धरम पाण्डे के लठैतों ने बदले की एक कार्रवाई में गुरपा की हरिजन बस्ती को जलाकर स्वाहा कर दिया था। जैसे ही हमने गाँव में प्रवेश किया, पत्रकारों में सक्रियता आ गयी और उनके कैमरे की फ़्लैश लाइट अँधेरे में चमक उठी। गुरपा के दूसरे छोर पर पड़ी पुलिस छावनी में बेचैनी फैल गयी।

दरअसल वे पहले ही हमारी तरफ बढ़ने लगे थे। गाँव वाले हमसे लगातार कह रहे थे कि हमें उनसे जाकर मिल लेना चाहिए, वरना वे समझेंगे कि गाँव में नक्सलाइट पहुँच गये हैं। एक साल पहले 11 अगस्त, 1976 को महिला नक्सलवादी शीला चटर्जी के नेतृत्व में फ़ौजी वर्दी पहने नक्सलवादियों के एक दस्ते ने शाम के धुंधलके में गुरपा में प्रवेश किया था और पाँच भूमिहारों को गोलियों से भून डाला था। इस वारदात के बाद से ही तपेश्वर पाण्डे के मकान पर पुलिस छावनी पड़ी थी। अचानक एक कड़कती आवाज सुनायी दी—"रुको !"